बाहर का सुख, भीतर का सुख

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जीवन में सभी प्राणी सुख चाहते हैं दुःख कोई नहीं चाहता। एक छोटा सा कीड़ा भी सुख चाहता है। मानव पंचेन्द्रिय प्राणी है। वह जन्म–जन्मान्तर से सुख और दुःख में जीवनयापन कर रहा है। बाहर का सुख इन्द्रिय सुख है। पंचेन्द्रिय का सुख भौतिक सुख है। इन्द्रियां हमें विषयों का सुख देती है। स्पर्शेन्द्रिय स्पर्श का सुख देती है। रसनेन्द्रिय जीह्वा का सुख प्रदान करती है। नेत्रेन्द्रिय नेत्रों का विषय सुख देती है। कर्णनेन्द्रिय श्रवण सुख प्रदान करती है और घ्राणेन्द्रिय सुगन्ध प्रदान करती है। सभी इन्द्रियां अपने–अपने विषयों को ग्रहण करती है। इन्द्रियां विषयों को ग्रहण कर मन को देती है। मन बुद्धि को प्रदान करता है और बुद्धि चेतना को प्रदान करती है।

इस भौतिक संसार में बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति सभी मनुष्य करना चाहते हैं। रोट, कपड़ा, मकान, चिकित्सा और शिक्षा की सुविधा सभी की आवश्यकता है। इससे अधिक की प्राप्ति उनके पुरुषार्थ पर निर्भर करती है। पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार वर्तमान में सुख और दुःख की अनुभूति मनुष्यों को होती है। सुख और दुःख पुण्योदय और पापोदय के परिणाम हैं। यह एक सिक्के के दो पहलू हैं। बाहर का सुख पंचेन्द्रियों का सुख है और भीतर का सुख आत्मिक सुख है। बाहर का सुख नश्वर है और भीतर का सुख शाश्वत है।

जीवन से तात्पर्य है जन्म से लेकर मृत्यु तक के बीच का समय। सभी मनुष्य जीवन जीते हैं किन्तु उन्हीं का जन्म सार्थक है जो दूसरों के लिए अपना जीवन समर्पित कर देते हैं। दुनिया उन्हीं को याद करती है जो परार्थ और परमार्थ के लिए जीवन यापन करते हैं। सादा जीवन उच्च विचार भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र है। यहां के ऋषियों, मुनियों, महर्षियां ने एकान्त में रहकर कन्दमूल फल खाकर नदियों और झरनों का पानी पीकर स्वस्थ तन, मन के द्वारा जो चिन्तन दिया है वह भारतीय साहित्य का आधार स्तम्भ है। मानव जीवन बड़ा ही अमूल्य है। मानव जीवन को पाकर यदि कोई इसको व्यर्थ में गंवा दे तो उसका जीवन निरर्थक ही रहता

है। बड़े भाग्य मानुष तन पावा अर्थात् मनुष्य का शरीर बड़े पुण्य कर्म के पश्चात् ही प्राप्त होता है। मानव जीवन बड़ा ही दुर्लभ है। चौरासी लाख जीवन योनियों में यह सर्वश्रेष्ठ है। मानव एक पंचेन्द्रिय प्राणी है। चेतना का पूर्ण विकास मानव में हुआ है। एक इन्द्रिय वाले जीव, दो इन्द्रिय वाले जीव, तीन इन्द्रिय वाले जीव, चार इन्द्रिय वाले जीव इन्द्रिय विकल कहलाते हैं, क्योंकि संपूर्ण इन्द्रियां इन जीवों में नहीं है।

पंचेन्द्रिय प्राणियों में मानव ही सर्वश्रेष्ठ है। पशुओं में भी पांच इन्द्रियां होती हैं किन्तु सोचने विचारने की क्षमता उनमें नहीं होती। मानव और पशु में यही अंतर है कि मानव ज्ञान संपन्न है। इसलिए मानव सर्वश्रेष्ठ है। मानव तन पाकर यदि मानव में मानवता का विकास न हो तो वह पशु से भी वदतर है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर एक दूसरे के सुख–दुःख से प्रभावित होना उसका धर्म है। यही कुछ ऐसी बाते है जो कि मानव को अन्य पंचेन्द्रिय प्राणियों से अलग करती है। मानव का सार है मनुष्यता, जो हर मनुष्य में पायी जाती है। इसे सुरक्षित रखना और सभी प्राणियों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाये रखना मानव का परम कर्त्तव्य है।

मानव एक धर्मनिष्ठ प्राणी है। उसे अपने मन को शिव संकल्पों से युक्त करना चाहिए। धर्म इसी आवश्यकता का प्रतिपादन करने के लिए है। मन को सत्यम् से, वाणी को शिवम् से और चरित्र को सुन्दरम् से युक्त करने का उपक्रम है धर्म। मनुष्यता ही मानव को सर्वोच्च स्थान प्रदान करती है तथा मानव प्रकृति के उस पक्ष पर बल देती है जो प्रेम, मैत्री, दया सहयोग के रूप में अभिव्यक्त होती है। इसके अंतर्गत व्यक्ति की संवेदना व दया, करुणा का भाव समस्त सृष्टि के जीवधारियों के लिए होता है। अतः अहिंसा इस दर्शन की प्रतिष्ठा के लिए सबसे अनिवार्य शर्त हैं।

मानव जीवन में कर्म को पूर्ण महत्व दिया गया है और यह स्वीकार किया गया है कि मानव की श्रेष्ठता का आधार, विकास का आधार जन्म लेने मात्र से नही अपितु कर्म पर आधारित है। कर्म ही मनुष्य को ऊंचा या नीचा बनाता है। प्रत्येक किया गया कर्म मानव के जीवन में निश्चित परिणाम देता है। भारतीय कर्म की मान्यताओं एवं मानवतावादी कर्म की मान्यता मे मूल अंतर यह है कि भारतीय कर्म सिद्धान्त में मानव के साथ कर्मो का संबंध पूर्व और पाश्चात्

रूप से जुड़ा है, जबकि मानवतावाद में कर्म सिर्फ वर्तमान जीवन तक आधारित है। अहिंसा एक सार्वभौमिक मूल्य है जिसे विश्व के सभी धर्म दर्शनों में मान्यता मिली है। मानव जीवन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की मुख्य भूमिका है। सदाचार के लिए "अहिंसा परमोधर्मः" का उद्घोष किया गया है। श्रम, तप और त्याग प्रधान भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिक मूल्यों की गहरी प्रतिष्ठा हैं। आध्यात्मिक जीवन के उत्कर्ष को निरन्तर गतिशील बनाये रखने के लिए व्रत, नियम आदि के पालन और मर्यादा से अपने आचार को संवारना आवश्यक है। बाहर का भौतिक सुख भाग्य और पुरुषार्थ के अधीन है। इस सुख में इन्द्रियों की तृप्ति तो हो सकती है किन्तु अध्यात्म के सुख की अपेक्षा यह नगण्य है।